पार उतरना धीरे से

विवेक मिश्र

परिचय-विवेक मिश्र

15 अगस्त 1970 में उत्तर प्रदेश के झांसी शहर में जन्म। विज्ञान में स्नातक, दन्त स्वास्थ विज्ञान में विशेष शिक्षा, पत्रकारिता एवं जनसंचार में स्नात्कोत्तर। दो कहानी संग्रह-'हनियाँ तथा अन्य कहानियाँ' एवं 'पार उतरना धीरे से' प्रकाशित। तीसरा कहानी संग्रह- 'ऐ गंगा तुम बहती हो क्यूँ?' शीध्र प्रकाश्य। लगभग सभी प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में कविताएं व कहानियाँ प्रकाशित। कुछ कहानियाँ संपादित संग्रहों व स्नातक स्तर के पाठ्यक्रमों में शामिल। साठ से अधिक वृत्तचित्रों की संकल्पना एवं पटकथा लेखन। 'light through a labyrinth' शीर्षक से कविताओं का अंग्रेजी अनुवाद राईटर्स वर्कशाप, कलकत्ता से तथा कहानिओं का बंगला अनुवाद डाना पब्लिकेशन, कलकत्ता से प्रकाशित।

संपर्क- 123-सी, पाकेट-सी, मयूर विहार फेज़-2, दिल्ली-91

मो;-9810853128

ईमेल;- vivek_space@yahoo.com

सूरज सिर पर था। धूप में नदी का पानी ऐसे चमक रहा था मानो नदी न हो, चाँदी की कोई चादर धीरे-धीरे हिल रही हो। पानी की सतह से उठती भाप ने धरती और आसमान के बीच एक झीना पर्दा तान दिया था, जिससे उस पार की हर चीज़ धुंधली दिख रही थी। रातना कमैती के मन में भी आस्था-अनास्था के बीच, ऐसा ही एक झीना-सा पर्दा पड़ा था। वह बार-बार सिर झटक कर उस पर्दे के पार देखने की कोशिश कर रही थी, पर सब कुछ धुंआ-धुंआ था। दाहिने हाथ में दबा तीन दिन का बच्चा ज़ोर-ज़ोर से रो रहा था। तभी एक 'घच्च,...घूँ...उँ,' की आवाज़ के साथ रक्त की बूँदें उसके मुँह पर पड़ी थीं। रक्त का एक फब्बारा-सा उड़ा था, जिसके कुछ छींटों ने नदी में बहती चाँदी को भी एक पल के लिए लाल कर दिया। आस्था के नाम पर कुछ बूँदें सूरज-चाँद और किसी अदृश्य शक्ति तक भी गई होंगी, पर रातना कमैती को केवल अपने पैरों के नीचे की खून से सनी हुई धरती ही दिख रही थी और उसे देख कर उसका सिर चकरा रहा था। वह जैसे समय की गति से पीछे छूटती जा रही थी। अनायास ही वह कई दिन-महीने लाँघ कर बिना किसी तारीख वाले अपने जीवन के एक सामान्य से दिन में जा पहुँची थी। रोज़ की तरह उस दिन भी वह भोर के काम निपटाते-निपटाते फिरकिनी-सी घर के हर कोने में घूम आई थी। वह थक गई थी, हाँफ़ गई थी और अभी दिन बीतना तो दूर पूरब में सुबह की चादर खुलनी शुरु भी न हुई थी। हाँ, आसमान रात के पकने से थोड़ा लाल ज़रूर हो गया था।

वह सुबह होने से पहले ही कुछ सोचे-समझे बिना किसी मशीन की तरह हज़ार काम निपटा लिया करती। उसे जाने-अनजाने भोर और उसकी प्राची बहुत भाती। इस समय आस-पड़ोस के हर आँगन में सन्नाटा रहता। केवल उसी के घर में उसके इतनी जल्दी उठ जाने से बर्तन-भांढ़े खड़कने लगते। इस समय उसका घर आँगन जागता और चारों तरफ़ दूर-दूर तक गली-मुहल्ला-चौपाल, कहूँ तो पूरा गाँव ही सोया रहता। धीरे-धीरे चिड़ियाँ चहचातीं, फिर ढ़ोर-बछेरू रंभाने लगते, रात भर चैन से सोई घिर्री के घड़घड़ाकर घूमने और बाल्टी के कुएं में उतरने की आवाज़े आने लगतीं। जैसे-जैसे यह आवाज़े तेज़ होतीं औसारे में बैठी रातना कमैती कुछ अनमनस्क होने लगती। वह मन ही मन सोचती कि रोज़ की तरह अभी गिद्धू झा की माई लाठी टेकती उसके घर के सामने से गुज़रेंगीं, थोड़ा ठिठक के भीतर की आहट लेंगी और फिर यह कहती हुई आगे बढ़ जाएंगी कि आस न औलाद, फिर न जाने कौन-सा नाज़ फटकती है कमैती इतने भिन्सारे और ऐसा ही होता। लगभग रोज़ ही कमैती उनकी यह बात सुनकर भी अनसुनी करती और भीतर आकर चापाकल पीटने लगती। भदभदाकर ढेर सारा पानी बाल्टी से उफ़न कर नाली में बह जाता। उसकी धोती घुटनों तक भीग जाती, पर वह भीतर-बाहर सूखी ही रहती। इससे पहले कि भोर का झुटपुटा दिन की चटक रोशनी में बदले, धूप की किरचें शीशे की चकमक-सी उसकी आँखों में चुभें, उन्हें चुंधियाएं और आस-पड़ोस के घरों के बच्चे जागकर अपनी